एक

सही लक्षय निर्धारित करना

Setting the Right Goal

परमेश्वर की दृष्टि में सफल होने के लिये, एक सेवक को उस लक्ष्य को समझना ज़रूरी है जिसे परमेश्वर ने उसके सामने रखा है। यदि वह अपने लक्ष्य को नहीं समझता है, तो उसके पास इसे मापने का कोई तरीका नहीं है कि क्या वह इस तक पहुंचने में सफल हुआ है या असफल।[1] वह अपने सफल होने के बारे में सोच सकता है जबकि वास्तव में वह असफल हुआ होता है। यह एक बड़ी त्रासदी है। वह प्रथम स्थान पर दौड़ने वाले धावक के समान है जो 200 मीटर की दौड़ की समापन रेखा पर प्रफुल्लित होकर दौड़ता है, विजय की मुद्रा में वह चिल्लाती हुई भीड़ के सामने हाथ खड़े करता है, वास्तव में यह नहीं जानता कि वह 1600 मीटर की दौड़ में भाग ले रहा है। अपने लक्ष्य को न समझ पाने पर निश्चय ही वह असफल हो जाता है। विजय पर विचार करना उसकी असफलता को निश्चित कर देता है। उसके लिये यह सही कहा जा सकता है : ''प्रथम, अन्तिम होंगे।''

अधिकांश प्रभु के सेवकों के कुछ विशिष्ट तरह के लक्ष्य होते हैं जिन्हें वे प्राय: अपना 'दर्शन' कहते हैं। अपनी विशिष्ट बुलाहट और दान के आधार पर वे इसे पूरा करने का प्रयास करते हैं। प्रत्येक की बुलाहट और दान अलग-अलग हैं, चाहे यह एक शहर का पास्टर हो, एक क्षेत्र में प्रचार करने वाला या कुछ सत्यों को सिखानेवाला हो। परन्तु मैं जिस परमेश्वर-प्रदत्त लक्ष्य के बारे में बता रहा हूं वह *सामान्य* होने के साथ साथ *प्रत्येक सेवक* पर कार्य करता है। यह *बड़ा* दर्शन है। परन्तु प्राय: ऐसा नहीं होता। बहुत से सेवकों के न केवल ऐसे दर्शन होते हैं जो परमेश्वर के सामान्य

1. इस पूरी पुस्तक में मैंने पुल्लिंग शब्द का प्रयोग किया है, इसका कारण व्यावसायिक सेवकाई में अधिकांशत: पुरुषों का होना है जैसे पास्टर अधिकतर पुरुष ही होते हैं। तथापि, मैं पवित्रशास्त्र से यह स्वीकार करता हूं कि परमेश्वर ने स्त्रियों को भी व्यावसायिक सेवकाई के लिए बुलाया है, और मैं जानता हूं कि इनमें से कुछ अपनी सेवकाई में काफी प्रभावी हैं। सेवकाई में स्त्रियां नामक अध्याय का विषय भी यही है।

दर्शनों के साथ मेल नहीं खाते, कुछ के विशिष्ट दर्शन होते हैं जो वास्तव में परमेश्वर के सामान्य दर्शनों का *विरोध* करते हैं। मैंने निश्चय ही एक बार एक विकासशील कलीसिया में पास्टर के रूप में कार्य करते समय ऐसा किया था।

परमेश्वर द्वारा प्रत्येक सेवक को दिया गया सामान्य लक्ष्य या दर्शन कौन सा है? हम मत्ती 28:18-20 से इसके उत्तर को ढूंढने हुए आरम्भ करते हैं, यह एक ऐसा परिच्छेद है जिससे हम सभी परिचित हैं जो यह बताता है कि हम प्राय: उसमें चूक जाते हैं। आइये एक एक पद करके इस पर विचार करें :

> ''यीशु ने उनके पास आकर कहा कि, स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार मुझे दिया गया है'' (मत्ती 28:18)।

यीशु अपने शिष्यों को यह समझाना चाहता था कि उसके पिता ने उसे *सर्वोच्च* अधिकार सौंपा है। बेशक परमेश्वर का उद्देश्य यह था (और है) कि यीशु *आज्ञाकारी* रहे, ऐसे समय में परमेश्वर अधिकार देता है। परन्तु यीशु इतना अद्वितीय है कि पिता ने उसे स्वर्ग और पृथ्वी का *सारा* अधिकार दे दिया है, न केवल सीमित अधिकार, जैसा वह कई बार दूसरों को देता है। *यीशु प्रभु है।*

इस तरह से यदि कोई व्यक्ति यीशु से अपने प्रभु के रूप में नहीं जुड़ा है तो वह परमेश्वर से भी सही तरह से जुड़ा हुआ नहीं है। यीशु किसी भी चीज़ से अधिक प्रभु है। इसी कारण नये नियम में 600 से भी अधिक बार उसे प्रभु कहा गया है। केवल 15 बार ही उसे उद्धारकर्त्ता कहा गया है। इसी कारण पौलुस ने लिखा, क्योंकि मसीह इसी लिये मरा और जी भी उठा कि वह मरे हुओं और जीवतों, दोनों का *प्रभु* हो (रोमि. 14:9, पर बल दिया गया है)। यीशु लोगों पर प्रभु के रूप में राज्य करने के उद्देश्य से मरने के पश्चात् फिर से जी भी उठा।

सच्चा बचानेवाला विश्वास
True Saving Faith

जिस समय प्रचारक और पास्टर उन लोगों को जो बचाए नहीं गए हैं ''यीशु को अपने उद्धारकर्त्ता के रूप में ग्रहण करने'' को आमंत्रित करते हैं (एक वाक्यांश या धारणा जो पवित्रशास्त्र में कहीं नहीं पाई जाती), यह सामान्यता सुसमाचार के प्रति उनकी समझ के मूलभूत प्रवाह को प्रगट करता है। उदाहरण के लिए जब फिलिप्पी दारोगा ने पौलुस से पूछा कि उद्धार पाने के लिए उसे क्या करना चाहिए, पौलुस ने उसे यह जवाब नहीं दिया, ''यीशु को अपने उद्धारकर्त्ता के रूप में ग्रहण कर।'' इसके विपरीत उसने कहा, ''*प्रभु यीशु मसीह* पर विश्वास कर तो तू उद्धार पाएगा'' (प्रेरित 16:31 पर बल दिया गया है)। ध्यान रखें कि वे उद्धार के सिद्धान्त या यीशु पर विश्वास करने के द्वारा नहीं बचाए गए, बल्कि प्रभु यीशु मसीह के व्यक्तित्व पर विश्वास करने के द्वारा। यह बचानेवाला विश्वास है। बहुतों का सोचना है कि चूंकि

वे अपने पापों के लिए यीशु की मृत्यु को एक पर्याप्त बलिदान मानते हैं, या वे इस पर विश्वास करते हैं कि उद्धार को विश्वास से पाया जाता है या फिर वे यीशु व उद्धार के बारे में सैंकड़ों चीज़ों को जानते हैं, इसी कारण उनके पास बचाने वाला विश्वास है। लेकिन ऐसा नहीं है। एक दुष्ट भी यीशु और उद्धार के बारे में इन सभी चीज़ों पर विश्वास करता है। बचानेवाले विश्वास में यीशु *में* विश्वास जुड़ा रहता है। और वह कौन है। वह *प्रभु* है।

निस्संदेह, यदि मैं यह मानता हूं कि यीशु प्रभु है, तो मैं उसे प्रभु मानते हुए कार्य भी करूंगा, अपने पूरे मन से उसके प्रति समर्पण करते हुए। यदि मैं उसके प्रति समर्पण नहीं करता तो मैं उस पर विश्वास भी नहीं करता हूं। यदि कोई कहे, ''उसके जूते में बहुत ज़हरीला सांप है'' और उसके बाद वह शांतिपूर्वक उन जूतों को पहन ले तो इसका अर्थ यह हुआ कि जो वह कह रहा है उस पर उसे भरोसा नहीं है। जो लोग इस तरह से कहते हैं कि वे यीशु पर विश्वास करते हैं लेकिन यदि वे अपने पापों से पश्चात्ताप कर के उसके प्रति स्वयं को समर्पित नहीं करते, तो वे वास्तव में यीशु पर विश्वास नहीं करते। वे संभवत: एक काल्पनिक यीशु पर विश्वास करते हों, परन्तु *प्रभु* यीशु पर नहीं, वह जिसके पास समस्त स्वर्ग और पृथ्वी का अधिकार है।

ऐसा कहा जाता है कि जब एक सेवक मसीहियत के मूलभूत संदेश को प्रवाहित करता है, तो वह आरम्भ में कठिनाई में होता है। यदि वह उस मूलभूत संदेश को संसार पर उस तरह से व्यक्त न करे, जैसा परमेश्वर चाहता है, तो वह किसी भी तरह से सफल नहीं हो सकता। संभव है कि वह एक विकासशील कलीसिया का पास्टर हो, परन्तु वह परमेश्वर की सेवकाई के लिए उसके सामान्य दर्शन को पूरा करने में बुरी तरह से असफल रहता है।

बड़ा दर्शन

The Big Vision

मत्ती 28:18-19 को फिर से देखें। अपने सर्वोच्च प्रभुत्व की घोषणा करने के पश्चात् यीशु ने एक आज्ञा दी :

> ''इसलिये तुम जाकर सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ और उन्हें पिता और पुत्र और पवित्रात्मा के नाम से बपतिस्मा दो और उन्हें वे सब बातें जो मैंने तुम्हें आज्ञा दी हैं, मानना सिखाओ'' (मत्ती 28:19-20अ)।

ध्यान दें कि यीशु ने 'इसलिये' शब्द का प्रयोग किया है। उसने कहा, ''*इसलिये* जाओ और ..... चेला बनाओ।'' अर्थात् ''*क्योंकि* जो कुछ मैंने कहा .... *क्योंकि* समस्त अधिकार मेरा है... *क्योंकि* मैं प्रभु हूं .... लोगों को *बेशक* मेरी बात माननी चाहिए..

.. अत: मैं *तुम्हें* आज्ञा दे रहा हूं (और तुम्हें मेरी बात माननी चाहिए) कि जाओ और चेला बनाओ, उन सभी चेलों को मेरी आज्ञाओं का पालन करने की शिक्षा देते हुए।''

अत: हमारी सेवकाइयों के लिए परमेश्वर का महान दर्शन है : *हमारा उत्तरदायित्व ऐसे शिष्यों का निर्माण करना है जो कि मसीह की सभी आज्ञाओं का पालन करने वाले हों।*

इसी कारण पौलुस ने कहा कि परमेश्वर का अनुग्रह उसे एक प्रेरित के रूप में इसलिए मिला कि, ''सब जातियों के लोग *विश्वास* करके उसकी *मानें* (रोमि. 1:5, पर बल दिया गया है)। *लक्ष्य* आज्ञाकारिता था; आज्ञाकारिता का *माध्यम* विश्वास था। जो लोग प्रभु यीशु पर सही विश्वास करते हैं वे उसकी सभी आज्ञाओं का पालन करते हैं।

अब इसी कारण पतरस ने पिन्तेकुस्त के दिन प्रचार किया, ''सो इस्राएल का सारा, घराना निश्चय जान ले कि परमेश्वर ने उसी यीशु को जिसे तुमने क्रूस पर चढ़ाया, प्रभु भी ठहराया और मसीह भी'' (प्रेरित. 2:36)। पतरस मसीह को क्रूस पर चढ़ाने वालों का यह बताना चाहता था कि परमेश्वर ने यीशु को *प्रभु* और *मसीह* बनाया। उन्होंने उसकी हत्या की जिसके लिये परमेश्वर ने चाहा था कि वे उसकी आज्ञा का पालन करें! अपराध-भावना में उन्होंने पूछा, ''हमें क्या करना होगा?'' तब पतरस की प्रथम प्रतिक्रिया थी, ''मन फिराओ!'' अर्थात् अनाज्ञाकारिता से आज्ञाकारिता की ओर आओ। यीशु को अपना प्रभु बनाओ। इसके बाद पतरस ने उन्हें यीशु की आज्ञानुसार बपतिस्मा लेने को कहा। पतरस शिष्य बना रहा था—मसीह के आज्ञाकारी अनुयायी—और वह सही संदेश के साथ सही तरीके से आरम्भ कर रहा था।

इसी तरह से, प्रभु के प्रत्येक सेवक को अपनी सफलता का मूल्यांकन करना चाहिए। हम सभी को स्वयं से पूछना चाहिए, ''क्या मेरी सेवकाई लोगों का मसीह की सभी आज्ञाओं का पालन करने में नेतृत्व कर रही है?'' यदि ऐसा है, तो हम सफल हो रहे हैं, यदि ऐसा नहीं है, तो हम असफल हो रहे हैं।

वे प्रचारक जो लोगों को केवल 'यीशु को ग्रहण' करने के लिये कहते हैं, उन्हें अपने पापों से फिरने को न बताते हुए, वे असफल हो जाते हैं। एक पास्टर जो प्रत्येक को प्रसन्न रखने व बहुत सी सामाजिक गतिविधियों को व्यवस्थित करने के द्वारा एक बड़ी मण्डली का निर्माण करने का प्रयास कर रहा है, वह वास्तव में असफलता की ओर जा रहा है। वह शिक्षक जो कि आधुनिक चमत्कार ''हवा का सिद्धान्त'' सिखाता है, वह असफल होता है। वे प्रेरित जो ऐसी कलीसियाओं का निर्माण करते हैं जिनमें पाए जाने वाले लोग कहते हैं कि वे यीशु पर विश्वास करते हैं, लेकिन उसकी आज्ञा का पालन नहीं करते, वे असफल होते हैं। वे भविष्यद्वक्ता जो लोगों को केवल यह बताने के लिए भविष्यद्वाणी करते हैं कि कौन सी आशीषें जल्द ही उन पर आनेवाली हैं, वे असफलता के मार्ग पर हैं।

मेरी असफलता

My Failure

कुछ वर्ष पूर्व, जब मैं एक विकासशील कलीसिया में पास्टर के रूप में कार्य कर रहा था, पवित्र आत्मा ने मुझसे एक प्रश्न पूछा जिसने मेरी आंखों को खोल दिया कि मैं परमेश्वर के सामान्य दर्शन को पूरा करने में किस तरह से असफल होने को था। जिस समय मैं मत्ती 25:31-46 में वर्णित भेड़ और बकरियों पर भावी न्याय के संबन्ध में पढ़ रहा था, पवित्र आत्मा ने मुझसे यह प्रश्न किया : ''*यदि आज आपकी कलीसिया के प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु हो जाए और वे भेड़ और बकरी के न्याय पर खड़े हों तो कितने लोग भेड़ होंगे और कितने लोग बकरियां?*'' या अधिक विशिष्ट रूप से, ''*पिछले वर्ष आपकी कलीसिया के कितने लोगों ने मसीह में भूखे भाई बहनों के लिये भोजन, प्यासे मसीहियों के लिये जल उपलब्ध कराया और निराश्रय या मसीह के अनुयायी यात्रियों की किस तरह से सहायता की, या जिन मसीहियों के पास वस्त्र नहीं थे उन्हें वस्त्र दिये, या फिर बीमार व कैदी विश्वासियों के पास गए?*'' बहुत कम ने ही इनमें से किसी चीज़ को या इन्हीं के समानान्तर कोई कार्य किया था, बेशक वे कलीसिया में आए, उन्होंने आराधना के गीत गाए, मेरे प्रवचनों को सुना और भेंट में धन भी दिया। अत: वे मसीह की समीक्षा में बकरियां थीं, और उसका दोष मुझ पर भी आंशिक रूप में आता है, क्योंकि मैं उन्हें यह नहीं सिखा रहा था कि मसीह में अपने भाई बहनों की ज़रूरतों को पूरा करना हमारे लिये कितना ज़रूरी है। मैं उन्हें मसीह की सभी आज्ञाओं का पालन करना नहीं सिखा रहा था। वास्तव में, मैंने जाना कि जो चीज़ परमेश्वर के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण थी, मैं उसकी ही उपेक्षा कर रहा था–दूसरी सबसे बड़ी आज्ञा, कि अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम कर–न कि उस नई आज्ञा का वर्णन करना जो यीशु ने हमें दी कि हम एक दूसरे से उसी तरह प्रेम करें जैसा उसने हमसे प्रेम किया।

मैंने अन्तत: यह भी जान लिया कि मैं वास्तव में यह सिखा रहा था कि शिष्य निर्माण के लिये परमेश्वर के सामान्य लक्ष्य के विरुद्ध क्या चीज़ कार्य करती है, मैंने अपनी मण्डली को ''सम्पन्नता का सुसमाचार'' सिखाया है। यद्यपि यह यीशु की इच्छा है कि उसके लोग पृथ्वी पर खज़ाना जमा न करें (मती 6:19-24), और यदि उनके पास खाने और पहनने को है तो उन्हें इसमें संतुष्ट रहना है (देखें इब्रा. 13:5, 1 तीमु. 6:7-8), मैं अपनी धनी कलीसिया को यह सिखा रहा था कि परमेश्वर चाहता है कि उनके पास बहुत सी सम्पत्ति हो। मैं एक पहलू में लोगों को यीशु की आज्ञा का पालन करने के बारे में सिखा रहा था। (जिस तरह से संसार के सैंकड़ों हज़ारों पास्टर करते हैं।)

एक बार यह जान लेने के बाद कि मैं क्या कर रहा था, मैंने पश्चात्ताप कर अपनी मण्डली से क्षमा मांगी। मैंने उन्हें मसीह की सभी आज्ञाओं का पालन करते हुए शिष्य

बनाना आरम्भ कर दिया। मैंने ऐसा भय और घबराहट के साथ किया, इस पर संदेह करते हुए कि मेरी कलीसिया में कुछ ऐसे हैं जो मसीह की सभी आज्ञाओं का पालन नहीं करना चाहते, वे एक आरामदायक मसीहियत को वरीयता देते हैं जिसमें किसी तरह के बलिदान की आवश्यकता नहीं होती। और मैं सही था। सभी तरह के संकेत देने पर भी, कुछ ने संसार भर के दुखी लोगों के लिए कोई चिन्ता नहीं दिखाई। उन्हें उन लोगों तक सुसमाचार को फैलाने की कोई चिन्ता नहीं थी जिन्होंने इसे पहले कभी नहीं सुना था। इसके विपरीत, उन्हें स्वयं के लिए और अधिक पाने की चिन्ता थी। पवित्रता के संबन्ध में, उन्होंने बहुत से गंभीर पापों की उपेक्षा की और सामान्य लोगों के समान जीवन बिताया; लेकिन उन्होंने प्रभु से प्रेम नहीं किया, क्योंकि वे यीशु की आज्ञाओं को पूरा करना नहीं चाहते थे। एक ऐसी चीज़ जो उसके प्रति हमारे प्रेम को प्रगट करेगी (देखें यूहन्ना 14:21)।

मुझे सत्य के प्रमाणित होने का भय था—कुछ मसीही वास्तव में भेड़ के वस्त्रों में बकरियां थे। जब मैंने उनसे स्वयं का इंकार करने और अपना क्रूस उठाने को कहा, तब कुछ बहुत क्रोधित हुए। उनके लिए कलीसिया अच्छे संगीत के साथ-साथ एक सामाजिक अनुभव रहा था, ठीक वैसे ही जैसे संसार क्लबों में आनन्द उठाता है। वे उस शिक्षा को वहन करते हैं जिसका संबंध उनके उद्धार से होता है या जिससे उन्हें यह पता चलता है कि परमेश्वर उनसे प्रेम करता है। लेकिन वे उसे सुनना नहीं चाहते जिसकी मांग परमेश्वर उनसे करता है। वे नहीं चाहते कि कोई भी उनके उद्धार को लेकर प्रश्न करें। यदि उन्हें परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने के लिए कीमत चुकानी पड़े तो वे इसके लिए तैयार नहीं होते। निश्चय ही वे उस समय तक परमेश्वर को धन देते हैं जब तक उन्हें विश्वास होता है कि बदले में परमेश्वर उन्हें बहुतायत से देगा, और उस समय तक जब तक कि उन्हें अपने धन दिये जाने का लाभ मिलता रहे, जैसे कलीसिया में कोई उच्च स्थान मिलना।

आत्म-परीक्षण का समय

A Time for Self-Examination

इस पुस्तक को पढ़ते समय प्रत्येक सेवक के लिए स्वयं से पूछने का यह अच्छा समय होगा जो पवित्र आत्मा ने मुझसे पूछा था कि *''यदि आज उन लोगों की मृत्यु हो जाए जिनकी मैं सेवकाई करता/ करती हूं तो भेड़ और बकरी के न्याय पर कितने लोग भेड़ होंगे और कितने लोग बकरियां?''* जब प्रभु के सेवक अपनी मण्डली के उन लोगों को यह आश्वासन देते हैं जो बचाए गए हैं जो कि वास्तव में बकरियों के समान कार्य करते हैं, तो वे उन्हें उसका विपरीत बता रहे होते हैं जो परमेश्वर चाहता है कि वे उन्हें बताएं। *वह सेवक मसीह के विरुद्ध कार्य कर रहा है।* मसीह ने मत्ती 25:31-46 में जो कुछ कहा कि इसके अनुसार वे लोगों को बताएं - वे

उसके विरुद्ध करते हैं। यीशु केवल बकरियों को चेतावनी देना चाहता है। वह नहीं चाहता कि वे इस तरह से सोचें कि वे स्वर्ग जा रही हैं।

यीशु ने कहा कि हमारे एक दूसरे को प्रेम करने के द्वारा सभी लोग जानें कि हम उसके शिष्य हैं (देखें यूहन्ना 13:35)। निश्चय ही वह एक ऐसे प्रेम के बारे में बता रहा है जो उस प्रेम से अधिक है जिसे अन्यजाति एक दूसरे को दिखाते हैं, नहीं तो उसके शिष्यों की गैर-विश्वासियों में पहचान नहीं हो सकेगी। जिस प्रेम के बारे में यीशु बोला वह आत्म-बलिदान करने वाला प्रेम है, जिसमें हम उसी तरह से एक दूसरे से प्रेम करते हैं जैसे उसने हमसे प्रेम किया, एक दूसरे के लिये अपने जीवनों को न्यौछावर करते हुए (1 यूह. 13:34; 1 यूह. 3:16-20)। यूहन्ना ने यह भी लिखा कि हम जानते हैं कि हम मृत्यु से होकर जीवन में पहुंचे हैं, अर्थात् एक दूसरे से प्रेम करने पर हम नया जन्म पाते हैं (1 यूह. 3:14)। क्या कुड़कुड़ाने वाले, विरोध में बोलने वाले तथा प्रभु के सेवकों से घृणा करने वाले जो मसीह के प्रेम को प्रगट करने की शिक्षा देते हैं क्या ये सब चीज़ें उन्हें नया जन्म पाए हुए के रूप में दिखाती हैं? नहीं, वे ऐसी बकरियां हैं जो कि नरक के मार्ग पर हैं।

सभी जातियों के लोगों को चेला बनाओ
Disciples of All Nations

आगे बढ़ने से पहले आइये मत्ती 28:19-20 को एक बार और देखें, बड़ा और सामान्य कार्य जो यीशु ने अपने शिष्यों को दिया, यह देखने को कि क्या हम इसमें से अन्य सत्यों का चयन कर सकते हैं।

> इसलिये तुम जाकर सब जातियों के लोगों को चेला बनाओ, और उन्हें पिता और पुत्र और पवित्रात्मा के नाम से बपतिस्मा दो और उन्हें सब बातें जो मैंने तुम्हें आज्ञा दीं हैं, मानना सिखाओ'' (मत्ती 28:19-20)।

इस पर ध्यान दें कि यीशु ने संसार की सभी *जातियों* को चेला बनाना चाहा, या यदि मूल यूनानी के अनुसार कहा जाए तो इस संसार के सभी *गैर-ईसाई* समूह। यदि यीशु ने ऐसा करने की आज्ञा दी है तो मुझे इस पर विश्वास करना है कि ऐसा करना संभव है। हम इस संसार के प्रत्येक गैर-ईसाई समूह को शिष्य बना *सकते* हैं। यह कार्य केवल ग्यारह शिष्यों को ही नहीं सौंपा गया था, लेकिन उनके बाद के प्रत्येक शिष्य को, क्योंकि यीशु ने ग्यारहों को अपने शिष्यों को वह *सब* सिखाने की आज्ञा दी जिसकी आज्ञा उसने उन्हें दी थी। अत: ग्यारहों ने अपने शिष्यों को दूसरों को शिष्य बनाने के लिए यीशु की सभी आज्ञाओं को मानना सिखाया, और यह प्रत्येक शिष्य के लिये जारी रहने वाली आज्ञा है। *यीशु के प्रत्येक शिष्य से जातियों को शिष्य बनाने के लिए इसी मार्ग से जुड़े रहने की अपेक्षा की गई है।*

''यह अधूरे रूप में यह बताती है कि महान आज्ञा'' को अभी तक पूरा क्यों नहीं किया गया है। करोड़ों की संख्या में मसीहियों के होने पर भी यीशु की आज्ञा का पालन करने वाले समर्पित शिष्यों की संख्या में कमी है। अधिकांश मसीहियों को शिष्य बनाने की कोई चिन्ता नहीं है क्योंकि वे स्वयं यीशु की आज्ञाओं का पालन नहीं कर रहे हैं। विषय के सामने आने पर वे प्राय: इस तरह से बहाने बनाते हैं : ''यह मेरी सेवकाई नहीं है'' ''मुझे इस दिशा में जाने की अगुवाई नहीं हुई है।'' अधिकांश पास्टर इस तरह के कथन कहते हैं जिस तरह से सभी बकरियां करती हैं, अर्थात् अपने लाभ के लिए आज्ञा का चयन करना।

यदि प्रत्येक मसीही ने सच में प्रभु यीशु पर विश्वास किया है, तो जल्द ही यह सारा संसार सुसमाचार को सुन लेगा। मसीह के शिष्यों का यह सामूहिक समर्पण ही इसे संभव बना पाएगा। वे अपना सारा समय और धन अस्थायी व सांसारिक चीज़ों पर व्यर्थ करना रोक देंगे और उसका प्रयोग उसे पूरा करने में करेंगे जिसे करने की आज्ञा प्रभु ने उन्हें दी है। तथापि, जब पास्टर कलीसिया में यह घोषणा करता है कि आनेवाले सप्ताह में एक मिशनरी संदेश को देगा, तो प्राय: लोगों भी उपस्थिति उस सप्ताह कम हो जाती है। बहुत सी बकरियां या तो अपने घर में रहतीं या फिर उस दिन कहीं और चली जातीं हैं। उनकी प्रभु यीशु मसीह की अन्तिम आज्ञा का पालन करने में कोई रुचि नहीं होती। दूसरी ओर, वे संसार की जातियों को शिष्य बनाने के विषय के साथ उत्तेजक रूप में जुड़े रहना चाहते हैं।

मत्ती 28:18-20 के संदर्भ में एक और अन्तिम बात यह है: यीशु ने अपने शिष्यों को उनके द्वारा बनाए जाने वाले शिष्यों को बपतिस्मा देने के लिये भी कहा, और प्रेरितों ने विश्वासयोग्यता के साथ इस आज्ञा का पालन किया। उन्होंने तत्काल ही पश्चात्ताप करने वालों और प्रभु यीशु मसीह पर विश्वास लाने वालों को बपतिस्मा दिया। बपतिस्मा, निस्संदेह मसीह की मृत्यु, गाड़े जाने और पुनरुत्थान के साथ एक विश्वासी की पहचान को बनाता है। नये विश्वासी मरकर मसीह में नई सृष्टि के रूप में जिलाए जाते हैं। इस सत्य को यीशु ने प्रत्येक विश्वासी के बपतिस्मे में प्रभावशाली बनाना चाहा, उसके मन पर यह छाप लगाते हुए कि अब वह एक नये स्वभाव के साथ एक नया व्यक्ति है। मसीह के साथ अब वह एक आत्मा है, और अब उसे मसीह द्वारा परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने में समर्थ किया गया है, जो कि उसमें वास करता है। वह अपने पापों में मरा हुआ था, लेकिन अब शुद्ध होकर उसे पवित्र आत्मा में जीवित किया गया है। वह 'क्षमा किये जाने' से कुछ अधिक है। इसके साथ ही वह *पूर्णतया बदला हुआ है।* अत: परमेश्वर फिर से इस बात का संकेत दे रहा है कि सच्चे विश्वासी भिन्न लोग हैं जो उस समय से भिन्न कार्य करते हैं जब वे आत्मिक रूप से मरे हुए थे। इसे यीशु के समापन शब्दों में भी कहा गया है, ''और देखो, मैं जगत के अन्त तक सदैव तुम्हारे साथ हूं'' (मत्ती 28:20)। क्या यह विचार

करना उचित नहीं है कि लोगों के साथ मसीह की निरन्तर रहने वाली उपस्थिति उनके व्यवहार को प्रभावित करेगी?

यीशु द्वारा शिष्यता की परिभाषा

Jesus Defines Discipleship

हमने यह स्थापित किया है कि हमारे लिये यीशु का अभिभावी लक्ष्य यह है कि हम *शिष्य* बनाएं, अर्थात्, उन लोगों को जिन्होंने अपने पापों से पश्चात्ताप किया तथा जो प्रभु की आज्ञाओं को सीखने के साथ-साथ उसका पालन भी कर रहे हैं। यूहन्ना 8:31ब-32 में यीशु ने इस बात की परिभाषा दी कि एक शिष्य क्या है :

> यदि तुम वचन में बने रहोगे तो सचमुच मेरे चेले ठहरोगे। और सत्य को जानोगे, और सत्य तुम्हें स्वतंत्र करेगा।

यीशु के अनुसार सच्चे शिष्य वे हैं जो उसके वचन में बने रहते हैं। उसके वचन से सत्य को सीखने पर, वे ''स्वतंत्र हो जाते'' हैं और बाद का संदर्भ यह संकेत देता है कि यीशु पाप से स्वतंत्र होने के बारे में बोल रहा था (देखें यूहन्ना 8:34-36)। अत: एक बार फिर से हम देखते हैं कि यीशु की परिभाषा के अनुसार शिष्य उसकी आज्ञाओं को सीखते व उनका पालन करते हैं।

यीशु ने बाद में कहा,

> मेरे पिता की महिमा इसी से होती है, कि तुम बहुत सा फल लाओ, *''तब ही तुम मेरे चेले ठहरोगे''* (यूहन्ना 15:8 पर बल दिया गया है)।

अत: यीशु की परिभाषा के अनुसार, शिष्य फल लाने के द्वारा परमेश्वर को महिमा देते हैं। जो फल नहीं लाते वे उसके चेले नहीं ठहरते।

यीशु ने लूका 14:25-33 में अधिक विशिष्ट रूप से बताया कि उसके सच्चे शिष्य में फल लाने की पहचान कैसे की जाती है। आइये पद 25 से पढ़ते हुए आरम्भ करें।

> और जब बड़ी भीड़ उसके साथ जा रही थी, तो उसने पीछे फिरकर उनसे कहा...

क्या यीशु इस बात से संतुष्ट था कि एक बड़ी भीड़ ''उसके साथ-साथ'' जा रही थी? क्या एक बड़ी मण्डली को प्राप्त करने के द्वारा उसने अपने लक्ष्य को पूरा करने में सफलता पा ली थी?

नहीं, यीशु इस बात से संतुष्ट नहीं था कि एक बड़ी भीड़ ने उसे चारों ओर से घेरा हुआ था, उसके संदेशों को सुनते हुए, उसके चमत्कारों को देखते हुए, और कई बार उसका भोजन खाते हुए। यीशु को ऐसे लोगों की तलाश है जो अपने पूरे मन,

प्राण, आत्मा और शक्ति से परमेश्वर से प्रेम करते हैं। वह अपनी आज्ञाओं का पालन करने वाले लोग चाहता है। उसे *शिष्यों* की ज़रूरत है। अत: उसने अपने साथ-साथ चल रही भीड़ से कहा :

> यदि कोई मेरे पास आए, और अपने पिता और माता और पत्नी और लड़केवालों और भाइयों और बहनों वरन् अपने प्राण को भी अप्रिय न जाने तो वह मेरा चेला नहीं हो सकता (लूका 14:26)।

इसमें कोई गलती नहीं हो सकती है : यीशु ने अपने शिष्य होने की मांग को रखा। लेकिन क्या उसके शिष्य वास्तव में उन लोगों से घृणा कर सकते हैं, जिनसे वे सबसे अधिक प्रेम करते हैं? यह उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पवित्रशास्त्र में हमें अपने माता-पिता का आदर करने और अपने जीवन साथी व बच्चों से प्रेम करने को कहा गया है।

यीशु ने यह निश्चय ही अतिशयोक्तिपूर्ण कहा है, अर्थात् बल देने के लिए अतिशयोक्ति देना। उसका अभिप्राय इससे कुछ कम नहीं है कि यदि हमें उसके शिष्य बनना है तो हमें सर्वोच्च रूप से उससे प्रेम करना है, उन लोगों की तुलना में कहीं अधिक जिन्हें हम स्वाभाविक रूप से प्रेम करते हैं। यीशु की अपेक्षा निश्चय ही उचित है क्योंकि वह ऐसी परमेश्वर है जिसे हमें पूरे मन, हृदय, प्राण और शक्ति से प्रेम करना चाहिए।

यह न भूलें–प्रभु के सेवकों का कार्य शिष्य बनाने का है, जिसका अर्थ है कि उन्हें यीशु से सर्वोच्च रूप से प्रेम करने वाले लोगों को उत्पन्न करना है, जो उसे अपने जीवन-साथी, बच्चों और माता-पिता से भी बहुत बहुत ज़्यादा प्रेम करें। इस पुस्तक को पढ़ने वाले प्रत्येक प्रभु के सेवक को स्वयं से यह पूछना अच्छा होगा : *''इस तरह के लोगों को उत्पन्न करने में मैं कितना सफल रहा हूं?''*

हम कैसे जान पाते हैं कि कोई यीशु से प्रेम करता है? यीशु ने यूहन्ना 14:21 में हमें बताया, ''जिसके पास मेरी आज्ञा है और वह उन्हें मानता है वही मुझ से प्रेम रखता है।'' अत: यह परिणाम निकालना निश्चय ही उचित होगा कि जो लोग यीशु से अपने जीवन-साथी, माता-पिता, बच्चों व भाई बहनों से भी अधिक प्रेम करते हैं वे उसकी आज्ञाओं का पालन भी करते हैं। *यीशु के शिष्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।*

दूसरी मांग
A Second Requirement

यीशु ने उस दिन साथ-साथ चलने वाली भीड़ से कहना जारी रखा,

> और जो कोई अपना क्रूस उठाए; और मेरे पीछे न आए; वह भी

मेरा चेला नहीं हो सकता (लूका 14:27)।

यीशु ने अपने शिष्यों के सामने इस दूसरी मांग को रखा। इससे उसका क्या अभिप्राय था? क्या शिष्यों को अपने कंधों पर लकड़ी का भारी लट्ठा लेकर चलना था? नहीं, यीशु एक बार पुन: अतिशयोक्ति का प्रयोग कर रहा है।

यीशु के यहूदी श्रोताओं में यदि सभी नहीं तो कुछ ने क्रूस पर दण्डित अपराधियों के मारे जाने की गवाही तो दी होगी। रोमी लोग अपराधी को अधिक भयभीत करने हेतु उसे नगर के बाहर ले जाकर क्रूसित किया करते थे।

इसी कारण मुझे इस वाक्यांश ''अपना क्रूस उठाए'' पर संदेह होता है, जिसे यीशु के दिनों में सामान्यता प्रयोग किया जाता था। क्रूस पर चढ़ाए जाने वाले प्रत्येक अपराधी ने रोमी सिपाही को यह कहते सुना था, ''अपना क्रूस उठा और मेरे पीछे हो ले।'' इन शब्दों से दण्डित व्यक्ति डर जाता था, क्योंकि वह जानता था कि यह कुछ दिनों या घंटों के दुख का आरम्भ था। अत: इस वाक्यांश का एक सामान्य अर्थ हो सकता है, ''अपने मार्ग में आने वाले अनिवार्य श्रम को स्वीकार करो।''

मैं पिता द्वारा अपने पुत्रों को यह कहते हुए कल्पना करता हूं, ''बेटा, मुझे पता है कि तुम्हें शौचालय साफ करना पसंद नहीं। यह एक बदबूदार व गन्दा कार्य है। लेकिन एक माह में एक बार तुम्हें इस कार्य को करना है, इसलिए *अपना क्रूस उठाने को तैयार हो जाओ।* जाओ और शौचालय साफ करो।'' मैं पत्नियों को अपने पतियों से यह कहते हुए कल्पना करता हूं, ''प्रिय, मैं जानती हूं कि तुम्हें रोमी लोगों को 'कर' देना पसंद नहीं है। लेकिन हमारा 'कर' बकाया है और 'कर' लेने वाला हमारे घर की सड़क पर ही है। इसलिए *अपना क्रूस उठा लो।* उस व्यक्ति को जाकर भुगतान करो।''

अपनी क्रूस उठाना आत्म-इंकार करने के समानान्तर है। यीशु ने मत्ती 16:24 में इसी भाव में इसका प्रयोग किया : ''यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे, तो अपने आप का इन्कार करे और अपना क्रूस उठाए, और मेरे पीछे हो ले।'' इसकी व्याख्या इस तरह से हो सकती है, ''यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे, तो वह अपने सभी कामों को एक ओर रखकर उस कठिन श्रम को स्वीकार करने के लिए तैयार रहे जो उस पर उसके निर्णय के परिणामस्वरूप आनेवाला है, और मेरे पीछे हो ले।''

अत: सच्चे शिष्य यीशु के पीछे चलने में हर दुख उठाने को तैयार रहते हैं। आरम्भ करने से पूर्व वे उसकी कीमत को जान लेते हैं और यह जानते हुए कि कठिन श्रम करना अनिवार्य है, वे दौड़ को समाप्त करने का निर्णय ले लेते हैं। यीशु ने अपने पीछे चलनेवाले को जो कीमत चुकाने को कहा यह उसका समर्थन करने वाले शब्द हैं। दो उदाहरण उसकी पुष्टि करते हैं :

तुम में से कौन है कि गढ़ बनाना चाहता हो और पहले बैठकर

> खर्च न जोड़े कि पूरा करने की विसात मेरे पास है कि नहीं? कहीं ऐसा न हो, कि जब नेव डालकर तैयार न कर सके, तो सब देखने वाले यह कहकर उसे ठट्ठों में उड़ाने लगें कि यह मनुष्य बनाने तो लगा, पर तैयार न कर सका? या कौन ऐसा राजा है, कि दूसरे राजा से युद्ध करने जाता हो, और पहले बैठकर विचार न कर ले कि जो बीस हज़ार लेकर मुझ पर चढ़ा आता है, क्या मैं दस हज़ार लेकर उसका सामना कर सकता हूं, कि नहीं? नहीं तो उसके दूर रहते ही, वह दूतों को भेजकर मिलाप करना चाहेगा (लूका 14:28-32)।

यीशु का अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो सका है : ''यदि तुम मेरे शिष्य होना चाहते हो, तो उसकी कीमत को पहले से ही जान लो, कहीं ऐसा न हो कि परेशानी आने पर तुम छोड़कर चले जाओ। सच्चा शिष्य उस श्रम को ग्रहण करता है जो मेरे पीछे चलने के कारण आता है।''

तीसरी मांग

A Third Requirement

यीशु ने शिष्यता की एक और मांग को रखा :

> इसी रीति से तुम में से जो कोई अपना सब कुछ त्याग न दे, तो वह मेरा चेला नहीं हो सकता (लूका 14:33)।

पुन:, यह परिणाम निकालना उचित प्रतीत होता है कि यीशु अतिशयोक्ति का प्रयोग कर रहा था। हमें अपना सब कुछ इस तरह से छोड़ देने की ज़रूरत नहीं है कि हम बिना घर, वस्त्र और भोजन के हो जाएं। तथापि, हमें अपनी सब चीज़ों का स्वामित्व परमेश्वर को सौंप देना चाहिए और ऐसा हमें इस स्तर तक करना चाहिए कि हम धन-सम्पत्ति के लिए नहीं बल्कि अपनी धन-सम्पत्ति के *साथ* परमेश्वर की सेवा करें। इसका परिणाम निश्चय ही अनावश्यक सम्पत्ति को देते हुए ईश्वरीय भण्डारी के रूप में सादा जीवन बितानेवाला हो सकता है, जैसा हम प्रेरितों के काम की पुस्तक में भी पढ़ते हैं कि आरम्भिक विश्वासियों ने भी ऐसा ही किया था। मसीह का शिष्य होने का अर्थ उसकी आज्ञाओं का पालन करना है, और उसने अपने अनुयायियों को पृथ्वी पर धन जमा करने की नहीं बल्कि स्वर्ग में जमा करने की आज्ञा दी है।

संक्षिप्त रूप में, यीशु के कथनानुसार, उसका शिष्य बनने के लिए मुझे फल लाना है। मुझे अपने परिवार के सभी सदस्यों से कहीं अधिक उससे सर्वोच्च रूप में प्रेम करना चाहिए। मुझे अनिवार्य परिश्रम का सामना करने को तैयार रहना चाहिए जो कि उसका अनुसरण करने के मेरे निर्णय द्वारा उत्पन्न हो सकता है और मुझे अपनी आय और धन के साथ वही करना चाहिए जैसा करने को वह मुझे कहता है। (और

उसकी बहुत सी आज्ञाएं इस बारे में कुछ-कुछ कहती हैं, इसलिए मुझे स्वयं को मूर्ख नहीं बनाना, जिस तरह से दूसरे लोग ऐसा कार्य करते हुए मूर्ख बनते हैं ''यदि परमेश्वर मुझसे मेरे सारे धन के बारे में कुछ करने को कहेगा तो मैं उसे करूंगा।'')

मसीह के अनुयायी इस तरह की वचनबद्धता करते हैं कि प्रभु के सेवक होने के कारण हमसे कुछ बनाने की अपेक्षा की जाती है। यह हमारा परमेश्वर द्वारा निर्धारित किया गया लक्ष्य है। हमें शिष्य बनाने वाले सेवक होने की बुलाहट मिली है।

मूलभूत सच्चाई यह है कि पूरे संसार भर के सेवक इससे चूक रहे हैं। यदि वे मेरे समान अपनी सेवकाइयों का मूल्यांकन करें तो उन्हें मेरे समान यह परिणाम निकालना होगा कि वे परमेश्वर की इच्छा और अपेक्षा से गिर रहे हैं। जब मैंने अपनी मण्डली के लोगों द्वारा मसीह के प्रति वचनबद्धता के स्तर पर विचार किया तो मुझे इस पर कुछ संदेह हुआ कि ऐसे बहुत से हैं जिन्हें सच्चा शिष्य नहीं कहा जा सकता है।

पास्टर, अपनी मण्डली पर ध्यान दें। लूका 14:26-33 के अनुसार आपके कितने लोग यीशु के मानदण्ड के अनुसार उसके शिष्य होने पर विचार करते हैं? प्रचारको, क्या आप ऐसे लोगों को प्रचार कर रहे हैं जिन्होंने स्वयं को मसीह की आज्ञाओं का पालन करने के लिए समर्पित किया है?

अब हमारी सेवकाइयों का मूल्यांकन करने का समय है, इससे पहले कि हम अन्तिम मूल्यांकन के लिये यीशु के समक्ष खड़े हों। यदि मैं उसके लक्ष्यों से चूक रहा हूं तो मुझे बाद की अपेक्षा इसे अभी जानना है। क्या आप ऐसा नहीं करेंगे?

अंतिम गंभीर विचार

A Final Sobering Thought

लूका 14:26-33 में वर्णित भीड़ को कहे गए यीशु के वचनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह लोगों को अपने शिष्य बनाना चाहता है। उसका शिष्य बनना कितना महत्वपूर्ण है? यदि कोई उसका शिष्य बनने का चुनाव न करे तो? यीशु ने लूका 14 के उपदेश की समाप्ति पर इन सभी प्रश्नों के जवाब दिये:

> नमक तो अच्छा है, परन्तु यदि नमक का स्वाद बिगड़ जाए, तो वह किस वस्तु से स्वादिष्ट किया जाएगा? वह न तो भूमि के और न खाद के लिये काम में आता है : उसे तो लोग बाहर फेंक देते हैं : जिस के सुनने के कान हों वह सुन ले (लूका 14:34-35)।

ध्यान दें कि यह कोई असंबद्ध वक्तव्य नहीं है।

नमक का नमकीन होना ज़रूरी है। इसी से वह नमक बनता है। यदि इसका स्वाद चला जाए, तो यह किसी काम का नहीं रहता और 'फेंक दिया जाता है'।

एक शिष्य होने के लिए यह क्या करता है? जिस तरह से नमक से नमकीन होने

की आशा की गई है, उसी तरह से यीशु लोगों से अपने शिष्य होने की अपेक्षा करता है। चूंकि वह परमेश्वर है, इसलिए हमारे लिए उचित है कि हम सर्वोच्च रूप से उससे प्रेम करें व क्रूस को उठाएं। उसका शिष्य न बनने पर, हम अपने अस्तित्व को नकार देते हैं। *हम किसी और के काम के नहीं रह जाते, सिवाय इसके कि ''फेंक दिये जाएं।''* क्या यह स्वर्ग के समान लगता है?

एक अन्य अवसर पर यीशु ने अपने *शिष्यों* से कहा (देखें मत्ती 5:1):

> तुम पृथ्वी के नमक हो; परन्तु यदि नमक का स्वाद बिगड़ जाए, तो वह फिर किस वस्तु से नमकीन किया जाएगा? फिर वह किसी काम का नहीं, केवल इसके कि बाहर फेंका जाए और मनुष्यों के पैरों तले रौंदा जाए (मत्ती 5:13)।

निश्चय ही ये गंभीर चेतावनियां हैं। सर्वप्रथम, नमकीन लोग ('समर्पित आज्ञाकारी' के लिए एक रूपक) ही परमेश्वर के काम के हैं। बाकी के ''किसी काम के नहीं सिवाय इसके कि बाहर फेंके और रौंदे जाएं।'' दूसरा, एक 'नमकीन' व्यक्ति का 'नमक-रहित' होना संभव है, अन्यथा यीशु को अपने शिष्यों को चेतावनी देने की कोई ज़रूरत न होती। यह सच्चाई सिखाई जाने वाली शिक्षा के कैसे प्रतिकूल है जिसमें कहा जाता है कि कोई भी मसीह में स्वर्ग से बंधा विश्वासी तो हो सकता है परन्तु ज़रूरी नहीं कि वह मसीह का अनुयायी हो या कोई भी उद्धार से वंचित नहीं हो सकता है। हम आगे के अध्यायों में इन क्रान्तिपूर्ण विचारों के बारे में और अधिक अध्ययन करेंगे।